शोध शीर्षक:–समकालीन दौर में हिंदी साहित्य और सामाजिक सरोकार

कपिल कुमार शोधार्थी
हिंदी विभाग
जनता वैदिक कॉलेज बड़ौत बागपत

शोध सारांश

समकालीन दौर में हिंदी साहित्य और सामाजिक सरोकार विषय के अन्तर्गत साहित्य और समाज दो क्षेत्र है और सरोकार एक ऐसा कारक है जो इन दोनो क्षेत्रों को आपस में जोड़ता है। क्योंकि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से सरोकार शब्द अंग्रेजी के 'कॉन्सर्न' अथवा 'कान्सर्नमेन्ट' का अनुवाद है, जिसे सम्बन्धशीलता, चिन्ता, उद्विग्नता, दिलचस्पी, हस्तक्षेप आदि के अर्थ में ग्रहण किया जाता है।"" एक अन्य अर्थ के मुताबिक सरोकार से अभिप्रायः है 1 वास्ता, 2 परस्पर व्यवहार या सम्बन्ध। अतः इस दृष्टि से साहित्य के सामाजिक सरोकार का संक्षिप्त तथा आधारभूत आशय यह हुआ कि जो भी कारक मानवीय सरोकारों जैसे कि मानव अर्थात व्यक्ति से सम्बंधित चिन्ता अथवा व्यक्ति की स्वयं की चिन्ताएँ, उसके द्वन्द्व अथवा अन्तर्द्वन्द्व या मानवता के आग्रह पर जो भी कुछ सोचा जाता है. से प्रेरित होकर साहित्यकार के माध्यम से साहित्य में समाहित होते है और समाज का मार्गदर्शन करते हैं अथवा मनुष्य की विचारधारा को एक नई दिशा देते हैं सामाजिक सरोकार कहे जा सकते हैं। इस प्रकार के सामाजिक सरोकार असल में वो सामाजिक मुद्दे होते हैं जो साहित्य में किसी रचना अथवा कृतिविशेष की विषय वस्तु बनते हैं और प्रस्तुत विषय वस्तु के आधार पर लेखक अथवा साहित्यकार अपने विचार अथवा अर्थपूर्ण सन्देश को समाज अथवा समाज की इकाई व्यक्ति तक पहुँचाता है या पहुँचाने का प्रयास करता है। "साहित्यकार द्रष्टा भी है और सृष्टा भी। वह आँखें खोलकर समाज को देखता है और पुनः उसके शोधन का उपाय करता है। अपनी कल्पना की विलक्षण शक्ति से वह भविष्य का निर्माण करता है, समाज का मार्ग दर्शन करता है। वह अपनी कल्पना से समाज को आदर्श की ओर प्रेरित करता है। समाज साहित्य से प्रेरणा और जीवन ग्रहण करता है।" "सामाजिक प्राणी होने की वजह से मनुष्य अपने लिए एक सुन्दर समाज की रचना हेतु चिन्तन-मनन करता है, उससे साहित्य के क्रमिक विकास को बल मिलता है। समाज में मनुष्य के एकाकीपन से उत्पन्न उदासीनता को, साहित्य मनोरम क्षणों में बदल देने की क्षमता रखता है। साहित्यकार का जीवन उसके अपने समाज में ही व्यतीत होता है, वहीं जीवन के अभावों से जूझता और भावो में आनन्द प्राप्त करता है सुख-दुःखात्मक परिस्थितियों और घटनाओं से संघर्षरत रहता है।" अतः साहित्य में जब ऐसे व्यक्ति की संवेदनाएँ एक सामान्य जन के सामने प्रस्तुत होती हैं तो निश्चित रूप से वह भी इन संवेदनाओं और भावनाओं को कहीं न कहीं अपने से जुड़ा पाता है और साहित्य से समाज के इस सम्बन्ध अथवा जुड़ाव को सामाजिक चेतना के संदर्भ में स्वीकारने से पीछे नहीं हटता।

मुख्य शब्द : सरोकार,संबंधशीलता, अंतर्द्वंद्व, विचारधारा, संघर्षरत, सामाजिक चेतना, मनन

शोध विस्तार : "आज का दौर उत्तर आधुनिकता का है। उत्तर आधुनिकता विचारों की पूर्णता में नहीं विखण्डन में विश्वास करती है। इसी कारण एक शब्द के अनेक अर्थ, अनेक चैनल, अनेक एकता केन्द्र और अनेक पार्टियाँ हो रही हैं। प्रायोजित या प्रस्तुत यथार्थ मिथ्या होता है और आशय कुछ और ही। अर्थात् जमाना संशय का है। उत्तर आधुनिकता का मूल तत्त्व संशयवाद या निषेधवाद ही है। कोई वस्तुगत सत्य नहीं, कोई मूल्य नहीं, आदर्श नहीं, जिसके आधार पर जीवन को सुलझाया जाए। आज की तारीख में पूरा विश्व अविश्वास में जी रहा है। उसके सामने एक बडा संकट विश्वास हीनता का भी है।"" मार्क्सवादी के अनुसार समाज का आधार आर्थिक ढाँचा होता है जिस पर समाज का निर्माण हुआ है। "बुर्जुआ वर्ग ने विश्व बाजार के शोषण के जरिए हर देश में उत्पादन और उपभोग को वैश्विक 'कास्मोपोलिटन' चरित्र में दिया है। प्रतिक्रियावादियों को लज्जित करते हुए, उसने उस राष्ट्रीय आधार को नीचे से खींच दिया है, जिस पर उद्योग खड़े थे। सभी पुराने स्थापित राष्ट्रीय उद्योग या तो नष्ट किए जा चुके हैं या रोजाना खत्म किये जा रहे हैं। उनकी जगह नए उद्योग पैदा हो रहे हैं, जिनकी शुरूआत सभी सभ्य राष्ट्रों के लिए जीवन मरण का सवाल है. ऐसे उद्योग जन्म ले रहे हैं जो अपना देसी कच्चा माल इस्तेमाल नहीं करते, बल्कि दूर-दराज से लाए कच्चे माल का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे उद्योग बन रहे हैं जिनके उत्पादन देश में ही नहीं, धरती के हर कोने में उपयोग किए जाते हैं। पुरानी जरूरतों की जगह जिन्हें देश के उद्योग पूरा करते थे, नई जरूरतें पैदा की जाती हैं. जिनके लोभ के लिए अन्य वातावरण तथा दूर के उत्पादन चाहिए। पुराने जमाने के स्थानीय तथा राष्ट्रीय एकान्त तथा आत्मनिर्भरता की जगह, हर क्षेत्र में नया समागम पैदा होता है, सार्वभौमिक अन्तर्निभरता पैदा होती है। जैसे यह भौतिक

क्षेत्र में होता है बौद्धिक क्षेत्र में भी होता है। विभिन्नराष्ट्रों के अपने-अपने बौद्धिक सृजन सबकी सम्पत्ति बन जाती है। राष्ट्रीय पक्षपात और संकीर्णता अधिकाधिक असम्भव होती जाती है और असंख्य राष्ट्रीय और स्थानीय साहित्यों के बीच एक विश्व-साहित्य पैदा होता है।“”

हमारे आर्थिक एवं सामाजिक नैतिक मान्यताओं में आये इस परिवर्तन ने व्यक्ति और वस्तु के आपसी संबंधों को भी बदल दिया है। ‘उत्तर आधुनिकता और संरचनावाद’ में प्रो. सुधीष पचौरी लिखते हैं थोड़ी कला, थोड़ा खेल, थोड़ा स्वास्थ्य, थोड़ा आनंद, थोड़ा दुख..... उपभोक्तावाद समाज की इस थोड़ी सांस्कृतिक जटिलता से रहित होता है। थोड़ा, थोड़ा व्यक्ति इन्हीं में एक थोड़ा चुनता है। यही उपभोक्ता समाज है। इस थोडी संस्कृति को सुरेन्द्र वर्मा ने मुझे चाँद चाहिए में व्यक्त किया है। इस उपन्यास की नायिका वर्षा प्रसन्न है कि वह अपने ग्लैमर की दुनिया में बहुत आगे बढ़ी और सरहदों को पार कर ग्लोबल हो गयी है। लेकिन अंत में वह महसूस करती है कि उसका सम्पूर्ण अस्तित्व केवल देह और वस्तु से आगे एक कदम भी नहीं बढ़ा है। जब भीषण यथार्थ की सच्चाईयाँ सामने आती हैं तो समाज में अपने आपको मिसफिट समझ आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाती है। अल्बर्ट कामू कृत ‘कलिगुला के अंत में भी सब कुछ पा लेने की खुशी के बाद भी एक असम्पूर्ण स्थिति का अहसास होता है। अरे जानती हो तुम, कथ्य बाकी बचा है... देखो पास आओ, देखो। कलिगुला यानी बाजार। आज मानव इसी भ्रम का शिकार हुआ है पाने की लालसा में वह प्रसन्न मुद्रा में दिखाई दे रहा है। भ्रम के टूटने पर सत्य का ज्ञान होने पर वह विघटित हो जाता है। मूल्यों के अभाव में निरीह पड़ जाता है। इस सदी के रचनाकारों ने समाज में अपना पैर पसार चुकी उपभोक्तावादी संस्कृति के साथ व्यक्ति के बीच पनपने वाले सम्बन्धों को एक नया आयाम दिया है। अलका सरावगी की रचना ‘दूसरे किले में औरत में लोग औरत को वस्तु बनाकर दिखाने में उद्धत हो गए हैं। यहाँ स्त्री भी शामिल हो चुकी है। इसी क्रम में ‘जयनन्दन की ‘प्रोटोकाल की नायिका ज्यूसी अपने जिस्म बेचकर अपने ग्लोबल पति के उपभोक्ता संस्कृति के तहत नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में नई परिभाषायें देने लगी है। हमारे देश में पाश्चात्य सभ्यता की घुसपैठी और मॉडल दिखने की वांछा ने हमारे सम्बन्धों को तार-तार कर दिया है। पारिवारिक सम्बन्ध टूटने के कगार पर हैं। यथार्थवादी युग में मनुष्य मानवता से सम्बन्ध तोड़कर अर्थ से जुड़ने में लग गया है। विक्रेता और ग्राहक के स्तर पर हमारे सामाजिक सम्बन्ध पहुंच चुके है। पर्यावरण आज की सुपर बिकाऊ चीज है। कथाकार सुरेन्द्र वर्मा, उदय प्रकाश, मनोहर श्याम जोशी आज की सच्चाई का नकाब हटाते हुए बाजारू ताकतों द्वारा स्त्री के पतन की कहानी को भी कहते हैं। आज फ्री सैक्स, प्रेम एवं चारित्रिक संकट के लिए जिम्मेदार पाश्चात्य संस्कृति से हमारा युवा वर्ग भ्रमित हो गया है। विश्व बाजार की दुनिया बड़ी बेरहम है। ऐसा असंवेदनशील क्रूर समय इस सदी में पहले कभी नहीं था, बाजार के नियम हमारे सामयिक मूल्यों पर हावी हो रहे हैं। बाजार में सारी मानवीय संवेदनाएँ अनजाने आहिस्ता आहिस्ता बाजार की संवेदनाओं में तब्दील होने लगी हैं। जो कुछ है, सब बाजार में है।सामाजिक और ऐतिहासिक ज्ञानः हिंदी साहित्य के विभिन्न युगों का अध्ययन हमें भारत के सामाजिक और ऐतिहासिक परिदृश्य की गहराई से समझ प्रदान करता है। यह हमें विभिन्न सामाजिक चुनौतियों, संघर्षों, और परिवर्तनों के प्रति सजग बनाता है।

आत्म-विकास और प्रेरणाः हिंदी साहित्य की महान कृतियाँ हमें आत्म-विकास, लक्ष्य निर्धारण, और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रेरित करती हैं। ये कृतियाँ हमें जीवन के प्रति एक नया परिप्रेक्ष्य प्रदान करती हैं।हिंदी साहित्य का अध्ययन हमें अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति गर्व महसूस कराता है हिंदी साहित्य का अध्ययन करना एक ऐसी यात्रा है जो हमें समाज के सूक्ष्मतम पहलुओं का गहराई से अन्वेषण करने का अवसर प्रदान करती है। हिंदी, जो भारत की विविधतापूर्ण संस्कृतियों को एक सूत्र में पिरोती है, अपनी बोलियों, कहानियों, कविताओं, उपन्यासों और नाटकों के माध्यम से भारतीय समाज के विविध रंगों को सामने लाती है।इसका साहित्य हमें उन विचारों, भावनाओं, और जीवनशैली को समझने की कुंजी प्रदान करता है जो भारतीय संस्कृति के मूल में हैं। यह हमें न केवल पारंपरिक मूल्यों और रीति-रिवाजों का ज्ञान देता है बल्कि आधुनिक समय में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों, चुनौतियों और उनके समाधानों के बारे में भी सोचने के लिए प्रेरित करता है।

हिंदी साहित्य का अध्ययन हमें ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति एक नई दृष्टि प्रदान करता है, हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे हमारा समाज और संस्कृति वर्तमान रूप में विकसित हुई है। इसके अलावा, यह हमें उन मूल्यों और सिद्धांतों की पहचान करने में मदद करता है जो हमारे समाज को एक साथ बाँधे रखते हैं। इस प्रकार, हिंदी साहित्य का अध्ययन न केवल हमें भाषाई और साहित्यिक ज्ञान प्रदान करता है, बल्कि यह हमें एक समृद्ध, जागरूक, और संवेदनशील व्यक्ति बनने में भी सहायता करता है।समाज की विभिन्न प्रकार की समस्याओं जैसे निर्धनता, बेरोजगारी साम्प्रदायिक हिंसा, पिछड़ी जातियों की समस्या, महिलाओं के विरूद्ध हिंसा, निरक्षरता, कृषक की गरीबी एवं ग्रस्तता, सामंतों, राजे, महाराजे एवं जमीदारों की निरंकुशता, मद्यपान और वेश्यावृत्ति पर गंभीर विचार कारण एवं निवारण सहित अपने सहित्य में स्थान दिया।‘युग-चेतना’ का तात्पर्य अपने समय के यथार्थ की पहचान है। वर्तमान समय में नई स्थितियों के कारण स्वातंत्र्योत्तर भारत में कौन-कौन से नए मूल्य उभरे हैं, चिन्तन उभरा है. संबंध उभरे हैं और हमारे अनुभवों में कौन-कौन से नए आयाम जुड़े हैं तथा युगीन यथार्थ इनसे टकराकर कौन-सा नया रूप धारण कर रहा है। इन सबकी चेतना ही ‘युग-चेतना है।

आधुनिक काल में कहानियों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनकी अन्तर्निहित युग-चेतना है। यों तो हर युग में साहित्यकार अपनी समकालीन स्थितियों से संचालित होता है, परन्तु इस युग में यह चेतना अधिक स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आयी है। प्राचीन काल में कहानियाँ पौराणिक संदर्भों को लेकर लिखी जाती थीं, परन्तु आधुनिक काल में कहानी का कथानक समकालीन युग-चेतना के धरातल पर आधुनिक संदर्भों से जुड़ गया है। प्रेमचन्द युग में पहले-पहल युग-चेतना का साक्षात्कार होता है। प्रेमचन्द युग के उत्तरार्द्ध या अन्तिम चरण में ही आदर्श की मनोरम कल्पना का कुहासा छटने लगा था। साहित्यकार युगीन यथार्थ की भूमि पर उतरने लगे थे। इसलिए हिन्दी कहानी में युगीन यथार्थ की चेतना की प्रवृत्ति बढ़ती गयी। स्वतंत्र्योत्तर युग में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक यथार्थ की युगीन चेतना की व्यापक अनुभूतियों को एक नई दिशा मिली- "आज का कोई भी कहानीकार जीवन के यथार्थ को अस्वीकार नहीं कर सकता, किन्तु उसे सही अभिव्यक्ति देने का प्रश्न जटिल है। जिन्दगी अनेक संदर्भों, स्थितियों और सीमाओं में सिमटी हुई दबती-उभरती आगे बढ़ रही है। परिवर्तन की गति का प्रभाव जिन्दगी के पूरे विस्तार पर पड़ रहा है।"यह उपयोगितावादी संसार उसे ही इज्जत और सम्मान देता है जो उसके लिए लाभदायक होता है, जो उसके काम आता है। यह संसार ईश्वर की भी इसीलिए पूजा करता है क्योंकि उसे उम्मीद है कि ईश्वर उसकी कामनाओं की पूर्ति करता है। जिस दिन उसे पता चल जाए कि ईश्वर ऐसा कुछ नहीं करता तो वह उसे मानने से इंकार कर देगा। जबतक कोई पेड़ हरा-भरा, छायादार, फलदार रहता है। लोग उसके पास जाते हैं। उसकी छाया में शरण लेते हैं. उसकी पूजा करते हैं किन्तु ज्यूँही वह सूख जाता है, ठूंठ हो जाता है लोगों के लिए वह राह का रोड़ा बन जाता है। इसी प्रकार यह अवसरवादी संसार उर्जावान, शक्तिशाली व्यक्ति को ही पूछता है। वृद्ध व्यक्ति उसके लिए अनुपयोगी, फालतू और बेकार हो जाते हैं।

भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक मानदण्डों के मध्य स्त्री की स्थिति निचले पायदान पर रही है। हिन्दू समाज उस बहुमंजिला इमारत की तरह है जिसमें प्रवेश के दरवाजे बंद है तथा जो व्यक्ति जिस मंजिल पर जन्म लेता है उसे उसी में मरना होता है।इस प्रकार तथा कथित सैद्धान्तिक आधुनिकता के तत्वों को निरूपित करने वाले उपन्यास की अपेक्षा सामाजिक जीवन की विसंगतियों, संघर्षों के वास्तविक चित्रण वाले उपन्यास सफलतापूर्वक उभरे हैं। ऐसा नहीं कि इनमें प्रणय प्रसंग और काम क्रीड़ा का अभाव है किन्तु वह लेखक का साध्य नही साधन है।हमारे आर्थिक एवं सामाजिक नैतिक मान्यताओं में आये इस परिवर्तन ने व्यक्ति और वस्तु के आपसी संबंधों को भी बदल दिया है। 'उत्तर आधुनिकता और संरचनावाद' में प्रो. सुधीष पचौरी लिखते हैं थोड़ी कला, थोड़ा खेल, थोड़ा स्वास्थ्य, थोड़ा आनंद, थोड़ा दुख..... उपभोक्तावाद समाज की इस थोड़ी सांस्कृतिक जटिलता से रहित होता है। थोड़ा, थोड़ा व्यक्ति इन्हीं में एक थोड़ा चुनता है। यही उपभोक्ता समाज है। इस थोडी संस्कृति को सुरेन्द्र वर्मा ने मुझे चाँद चाहिए में व्यक्त किया है। इस उपन्यास की नायिका वर्षा प्रसन्न है कि वह अपने ग्लैमर की दुनिया में बहुत आगे बढ़ी और सरहदों को पार कर ग्लोबल हो गयी है। लेकिन अंत में वह महसूस करती है कि उसका सम्पूर्ण अस्तित्व केवल देह और वस्तु से आगे एक कदम भी नहीं बढ़ा है। जब भीषण यथार्थ की सच्चाईयाँ सामने आती हैं तो समाज में अपने आपको मिसफिट समझ आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाती है। अल्बर्ट कामू कृत 'कलिगुला के अंत में भी सब कुछ पा लेने की खुशी के बाद भी एक असम्पूर्ण स्थिति का अहसास होता है। अरे जानती हो तुम, कथ्य बाकी बचा है... देखो पास आओ, देखो। कलिगुला यानी बाजार। आज मानव इसी भ्रम का शिकार हुआ है पाने की लालसा में वह प्रसन्न मुद्रा में दिखाई दे रहा है। भ्रम के टूटने पर सत्य का ज्ञान होने पर वह विघटित हो जाता है। मूल्यों के अभाव में निरीह पड़ जाता है। इस सदी के रचनाकारों ने समाज में अपना पैर पसार चुकी उपभोक्तावादी संस्कृति के साथ व्यक्ति के बीच पनपने वाले सम्बन्धों को एक नया आयाम दिया है।

निष्कर्ष:

इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि साहित्य और समाज का सम्बन्ध स्थापित करने वाले वो सभी विषय सामाजिक सरोकारों के दायरे में आते हैं जो साहित्य में किसी रचना अथवा कृति के सृजन का आधार बनकर सामाजिक चेतना और समाज में मानवीय सरोकारों के प्रति बेतना का उद्देश्य अथव लक्ष्य पूरा करते हैं।इस दृष्टि से सामाजिक सरोकारों के शीर्षक और उप शीर्षक विद्वानों की अपनी-अपनी शोध दृष्टि और व्यक्तिगत अनुभव अथवा अध्ययन के कारण भिन्न-भिन्न हो सकते है। किन्तु इन सब में यह बात निश्चित रूप से समान मिलेगी कि इनके केन्द्र में मानव अथवा व्यक्ति होगा और व्यक्ति का परिवेश होगा समाज क्योंकि व्यक्ति के बिना समाज नहीं है और समाज के बिना सामाजिक सरोकार नहीं है। साहित्य में अभिव्यक्त व्यक्ति अथवा साहित्यकार की सामाजिक चेतना सामाजिक सरोकारों से प्रेरित भी होती है और इनकी प्रतिपादक भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास-डॉ० पारुकान्त देसाई पृ० 464
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में युग-बोध डॉ० लालसाहब सिंह पृ०-14
3. नदी फिर वह चली-हिमांशु श्रीवास्तव पृ० 23
4. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास – डॉ० पारुकान्त देसाई-पृ० 264
5. डॉ. रवि श्रीवास्तव उत्तर आधुनिकता विभ्रम और यथार्थ, 113
6. वागर्थ, (अंक 53) सन् 1999 पृ. 17
7. कसौटी अंक-62 सन् 1999 पृ. 55
8. आजकल अक्टूबर-सन् 2000 पृ. 05
9. मार्क्स एंगेल्स/क्लैक्टेट वर्क्स पृ. 487/488 जिल्द 6
10. नया ज्ञानोदय सं. रवीन्द्र कालिया, अंक 90 अगस्त 2010, पृ. 48

Copyright & License:

© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.